National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2026; 1(66): 106-109
© 2026 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ. आशीष डोभाल
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, योग विज्ञान विभाग,
स्पर्श हिमालय विश्वविद्यालय,
जीवनवाला, देहरादून,

Correspondence:
डॉ. आशीष डोभाल
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, योग विज्ञान विभाग,
स्पर्श हिमालय विश्वविद्यालय,
जीवनवाला, देहरादून,

भारतीय दर्शन में कर्मयोग के स्वरुप का विवेचनात्मक अध्ययन

डॉ. आशीष डोभाल

शोधसार

भारतीय संस्कृति में कर्म का विशेष महत्व है। यह सम्पूर्ण सृष्टि कर्म के सिद्धान्त पर ही कार्य करती है। कर्म के अभाव में व्यक्ति अपना नैतिक उत्थान नहीं कर सकता। इसका विषद् वर्णन वेदों, उपनिषदों के साथ-साथ दर्शनों में भी किया गया है। कर्म ही मानव के इस जन्म व आने वाले जन्मों का कारण होता है। गीता में कर्म के विषय में विस्तार से वर्णन किया गया है। भारतीय शास्त्र मानव को किसी भी परिस्थिती में कर्म करने का उपदेश देते है। यह जीवन कर्म प्रधान है और कोई भी प्राणि बिना कर्म किये एक क्षण भी नहीं रह सकता। इन भारतीय शास्त्रों में दर्शन का विशेष महत्व है, जा कि वेदों का ही सार कहे जाते है। इन भारतीय दर्शनों में भी कर्मयोग के विषय वर्णन किया गया है। अलग-अलग दर्शनों में कर्मयोग के विषय में भिन्न-भिन्न तथ्य प्रस्तुत किये गये है। प्रस्तुत शोध कार्य में दर्शनों में वर्णित कर्मयोग के स्वरूप एवं इनके तथ्यों का विवेचनात्मक अध्ययन विसतार से किया गया है।

मुख्य बिन्दु- षट्दर्शन, वेद, कर्मयोग,।

प्रस्तावना-

भारतीय ज्ञान परम्परा आदि काल से चली आ रही है। जिसका प्रमाण वेदों से प्राप्त होता है। वेदों में ही इस संसार का सभी ज्ञान समाहित है। प्राचीन काल से ही भारत में शिक्षा का विशेष महत्व रहा है। मानव अपनी जिज्ञासा को शान्त करने के लिए वेदों का अध्ययन पुरातन काल से करता आ रहा है। परन्तु आम जनमानस के लिए इन वेदो का अध्ययन व उसके गूढ़ ज्ञान को समझना कठिन है। इसलिए वेदो के उपरान्त ऋषियों ने उपनिषदों की रचना की जिससे आम जनमानस भी वेदों के ज्ञान को समझ कर अपने जीवन को परिष्कृत कर सके।

यद्यपि वेद और उपनिषद् की शिक्षाओं में कुछ भिन्नता है, परन्तु फिर भी उनका मूल उद्देश्य मानव का कल्याण करना ही है। "वेद का आधार कर्म है, वेद में यज्ञ की विधियों का वर्णन है। परन्तु उपनिषद् का आधार ज्ञान है।
उपनिषद् का उद्देश्य जीवन सम्बन्धी चिन्तन पर जोर देना है।"[1] यह दोनो ही ग्रन्थ भारतीय ज्ञान परम्परा के मूल स्त्रोत है, जो आदि काल से मानव जाति का कल्याण कर रहे है।

इसी ज्ञान परम्परा में दर्शनों का भी विशेष महत्व है। इन दर्शनों का स्त्रोत उपनिषदों को माना जाता है। "उपनिषदों का भारतीय दर्शन के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय दर्शन के विभिन्न सम्प्रदायों का स्त्रोत उपनिषद् है।"[2] भारतीय दर्शनों की प्रमुख प्रवृत्ति आध्यात्म है और उपनिषद् ही भारतीय दर्शनों के आध्यात्मवाद का प्रतिनिधित्व करते है।

दर्शनों का मूल विषय तत्वज्ञान है। "भारतीय दर्शन में आध्यात्मिक ज्ञान को प्रधानता दी गई है। यहाँ का दर्शनिक सत्य के सैद्धान्तिक विवेचन से ही सन्तुष्ट नहीं होता, बल्कि वह सत्य की अनुभूति पर जोर देता है।"[3] भारतीय दर्शन का उदय जीवन से जुड़ी समस्याओं के समाधान खोजने की इच्छा से हुआ है। इसलिए भारतीय दर्शन केवल सैद्धान्तिक नहीं अपितु व्यवहारिक भी है।

भारतीय दर्शनों में ज्ञान तथा कर्म सिद्धान्त का विशेष महत्व है। जब साधक ज्ञान के माध्यम से ईश्वरीय सत्ता को प्राप्त कर अपने दुःखों का अन्त करता है तो उसे ज्ञानयोग कहते है और जब साधक कर्म के माध्यम से ईश्वरीय सत्ता को प्राप्त कर अपने दुःखों का अन्त करता है तो उसे कर्मयोग कहते है। ''कर्मयोग, निस्वार्थता और सत्कर्म द्वारा मुक्ति प्राप्त करने की एक विशिष्ट प्रणाली है।''[4] कर्मयोग का वर्णन विभिन्न ग्रन्थों में देखने को मिलता है। यह कर्म सिद्धान्त कहीं न कहीं आध्यात्मवाद से सम्बन्धीत है। इस कर्म सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य जैसा कर्म करता है उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है।

दर्शन- दर्शन के अर्थ को पाश्चात्य एवं भारतीय सन्दर्भ में अलग-अलग रूप से समझा जा सकता है। वस्तुतः लोग ''फिलोसफी'' को दर्शन समझते है, किन्तु यह पूर्ण रूप से सत्य प्रतीत नहीं होता है। भारतीय दर्शन का उदेश्य ज्ञान प्राप्ति के साथ-साथ जीवन सुधार एवं दुःख निवृति आदि से भी है। दर्शन शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'दृश्' धातु से मानी जाती है, जिसका अर्थ है 'देखना'। इस अर्थ में दर्शन वह है, 'जिसके द्वारा देखा जाय।' यहाँ पर देखने का अर्थ तार्किक एवं अन्तदृष्टि से देखना है। ''व्यापक अर्थ में **''दृश्यते यथार्थ तत्त्वमनेन''** अर्थात जिसके द्वारा यथार्थ तत्त्व की अनुभूति (अनुभव) हो, वही दर्शन है। अब प्रश्न यह है कि किसके द्वारा देखा जाय? जिसका उत्तर है- दर्शन शास्त्र द्वारा।''[5]

दूसरे शब्दों में कहा जाय तो, दर्शन वह ज्ञान है जिसके माध्यम से तत्त्व का साक्षात्कार किया जा सकता है, भरतीय दार्शनिक तत्त्व की अनुभूति प्राप्त करना चाहता है। वह तत्त्व की मात्र बौद्धिक व्याख्या से संतुष्ट नहीं होता।

भारतीय दर्शन की विशेषता इसकी व्यवहारिकता है। भारत में दर्शन की उत्पत्ति जीवन सम्बन्धी समस्याओं के समाधान के लिए हुयी थी। मानव ने अपने दुःखों को दूर करने के लिए दर्शन का सहारा लिया। प्रो. हिरियाना ने कहा है ''पाश्चात्य दर्शन की भाँति भारतीय दर्शन का आरम्भ आश्चर्य एवं उत्सुकता से न होकर जीवन की नैतिक एवं भौतिक बुराइयों के शमन के निमित्त हुआ था, दार्शनिक प्रयत्नों का मूल उदेश्य था जीवन के दुःखों का अन्त ढूँढना और तात्विक प्रश्नों के प्रादुर्भाव इसी सिलसिले में हुआ।''[6] प्रो. मैक्समूलर ने भी कहा है ''भारत में दर्शन का अध्ययन मात्र ज्ञान प्राप्त करने के लिए नहीं, वरन् जीवन के चरम उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किया जाता था।''[7] इससे यह स्पष्ट होता है कि भारत में ज्ञान की चर्चा ज्ञान के लिए न होकर मोक्ष की अनुभूति के लिए हुई है, अतः यह कहा जा सकता है कि भारत में दर्शन का प्रयोग मोक्ष प्रप्ति के लिए ही हुआ है।

दर्शन में कर्मयोग का स्वरुप- मानुष्य जीवन कर्म प्रधान है। बिना कर्म किये मनुष्य क्षण भर भी नहीं रह सकता। यदि कोई यह कहता है कि वह कोई कर्म नहीं कर रहा है तो यह मिथ्या होगा। श्रीमद्भगवद्गीता में भी कर्मयोग के विषय में विस्तार से वर्णन किया गया है। भारतीय दर्शनों में भी कर्म सिद्धान्त की विवेचना की जाती है। भारतीय दर्शन पुर्नजन्म के सिद्धान्त को स्वीकार करता है जो पूर्ण रुप से कर्म पर ही आधरित है अर्थात मनुष्य जैसा कर्म इस जन्म में करेगा उसे उसी के अनुरुप अगला जन्म प्राप्त होगा। इसलिए भारतीय दर्शनों में कर्म सिद्धान्त का वर्णन विशेष रुप से किया गया है। केवल एक चार्वाक दर्शन को छोड़कर अन्य सभी दर्शनों ने कर्म के सिद्धान्त को स्वीकार किया है। ''चार्वाक को छोड़कर भारत के सभी दर्शन चाहे वह वेद विरोधी हों अथवा वेदानुकूल हों, कर्म के नियम को मान्यता प्रदान करते है।''[8] इस प्रकार कुल नौ दर्शन कर्म के सिद्धान्त को स्वीकार करते है।

बौद्ध-जैन दर्शन में कर्म- बौद्ध एवं जैन दर्शन को समकालीन दर्शन कहा जाता है। इन दोनो के समय को छठी शताब्दी का माना जाता है।

बौद्ध दर्शन कर्म के सिद्धान्त को स्वीकार करता है। बौद्ध दर्शन के अनुसार ''मनुष्य का वर्तमान जीवन उसकी एक पूर्ववर्ती अवस्था का परिणाम समझा जा सकता है।''[9] बौद्ध दर्शन ने माना है कि वर्तमान जन्म पूर्व जन्म के कर्मों का ही फल है और वर्तमान जन्म आगामी जन्म से ऐसा ही सम्बन्ध है, जैसा पूर्व जन्म का आगामी जन्म से। बौद्ध दर्शन में दुखों का पता लगाने के लिए प्रतीत्यसमुत्पाद के सिद्धान्त का वर्णन देखने को मिलता है। जिसे 'द्वादश-निदान', 'संसार चक्र', 'भावचक्र', 'जन्म-मरण चक्र', 'धर्म चक्र' भी कहा जाता है। इस प्रतीत्यसमुत्पाद से ही कर्मवाद की स्थापना होती है। यही सिद्धान्त पूर्व, वर्तमान और भविष्य जीवन में कार्य-कारण के रुप में स्थापित है। ''वर्तमान जीवन अतीत जीवन के कर्मो का फल है तथा भविष्य जीवन वर्तमान जीवन के कर्मो का फल है।''[10] ऐसा ही वर्णन करते हुए रामनाथ आर. पाण्डेय कहते है कि ''बौद्ध कर्मवाद में प्रतीत्य-समुत्पाद का विशिष्ट महत्व है क्योंकि प्रतीत्य-समुत्पाद को भी कर्म कहा गया है और कर्मवाद के साथ इसका आनिवार्य सम्बन्ध है।''[11] हीनयान के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्म के अनुसार शरीर, मन तथा निवास स्थान को अपनाता है। 'धम्म' के कारण व्यक्ति के कर्म-फल का नाश नहीं होता है।[12] किन्तु महायान कर्मो के आदान-प्रदान को स्वीकार करता है। कर्मो के इस आदान-प्रदान को 'परिवर्तन' कहा जाता है। ''बोधि सत्व अपने पुण्य कर्मो के द्वारा दूसरों को दुःख विमुक्त करता है और उसके पाप कर्मो को स्वयं भोग करता है।''[13] रामनाथ आर. पाण्डेय ने अपने शोध में कर्म के दो प्रकार बताये है- 1- चित्त कर्म, 2- चैतसिक कर्म। इसमें चित्त अर्थात मानसिक कर्म को ही मुख्य कहा गया है।

जैन दर्शन में भी कर्म सिद्धान्त केा महत्व दिया गया है। उसके अनुसार ''जो आत्मा को परतंत्र करता है, दुःख देता है, संसार मंे परिभ्रमण कराता है, उसे कर्म कहते है।''[14] जैन दर्शन अनेक कर्मो को मानता है। उनमें से भी मुख्यतः आठ प्रकार के कर्मो की चर्चा करता है- 1- ज्ञानवरणीय कर्म, 2- दर्शनावरणी कर्म, 3- वेदनीय कर्म, 4- मोहनीय कर्म, 5- आयु कर्म, 6- नाम कर्म, 7-गोत्र कर्म, 8- अंतराय

कर्म। इनमें से प्रथम चार कर्मो को घाति कर्म तथा अन्तिम चार कर्मो को अघाति कर्म से दो श्रेणियों में बाटाँ गया है। बौद्ध दर्शन के समान जैन दर्शन भी वर्तमान जीवन को आधार पूर्व जन्म के कर्म को ही मानता है।

वेदान्त-मीमांसा दर्शन में कर्म- वेदो के दो अंग है- ज्ञानकाण्ड और कर्मकाण्ड। वेदों के ज्ञानकाण्ड का वर्णन वेदान्त दर्शन में हुआ है और कर्मकाण्ड का वर्णन मीमांसा दर्शन में हुआ है।

पूर्व मीमांसा अर्थात मीमांसा दर्शन में वेदों में वर्णित कत्तव्य कर्मो अर्थात इष्टकर्म और पूत्तकर्म का वर्णन किया गया है। इष्टकर्म वे कर्म है जो मन्त्रों द्वारा वर्णित है जैसे- यज्ञादि, और पूत्तकर्म वे कर्म है जिनकी आज्ञा वेदों में है परन्तु विधि लौकिक है जैसे- कूप, विद्यालय, अनाथलय आदि का निर्माण करना। इन दोनो कर्मो के तीन अवान्तर भेद है- 1- नित्य कर्म, 2- नैमित्तिक कर्म, 3- काम्य कर्म,।

- नित्यकर्म- प्रतिदिन किये जाने वाले कर्म जैसे- यज्ञ, दान आदि।
- नैमित्तिक कर्म- वह कर्म जो किसी विशेष निमित्त से किया जाय जैसे- बालक के जन्म लेने पर नामकरण व चूणाकर्म संस्कार।
- काम्यकर्म- किसी कामना की पूर्ती के लिए किये जाने वाले कर्म।

इसके अतिरिक्त कर्म के दो और भेद है- निषिद्ध कर्म अर्थात वह कर्म जो शास्त्र विहित नहीं है एवं प्रायश्चित कर्म अर्थात निषिद्ध कर्म के फल से बचने के लिए अथवा कम करने के लिए जो कर्म किये जाते है, वह प्रायश्चित कर्म होते है। मीमांसा का कर्म सिद्धान्त भी गीता के कर्म सिद्धान्त के समान ही है। मीमांसा के कर्म सिद्धान्त को अपूर्व कहा जाता है, जिसका अर्थ होता है 'वह जो पहले नहीं था।'[15]

वेदान्त दर्शन में भी तीन कर्म स्वीकृत है यथा- 1 संचित कर्म, 2 प्रारब्ध कर्म, 3 क्रियमाण कर्म।[16]

- संचित कर्म- पूर्व जन्मों में किये गये कर्मो को संचित कर्म कहते है।
- प्रारब्ध कर्म- वह कर्म जो भोगोन्मुख हो जाते है, प्रारब्ध कहलाते है।
- क्रियमान कर्म- जो कर्म वर्तमान में किये जा रहे है वह क्रियमान कर्म है। यदि क्रियमान कर्म फल तत्काल नहीं मिलता तो वह संचित कर्म बनते है।

वेदान्त में तत्व ज्ञान से दो प्रकार के कर्मो (संचित और क्रियमान) के निवारण का उल्लेख मिलता है, जिससे मनुष्य पुनर्जन्म के बन्धन से मुक्त हो जाता है। परन्तु प्रारब्ध कर्म का निवारण नहीं मिलता है। उसका फल भोग करने के लिए शरीर रह जाता है और जब प्रारब्ध की शक्ति समाप्त हो जाती है तब उसका भी अन्त हो जाता है।[17] आसक्ति के साथ किया गया कर्म ही बन्धन का कारण बनता है। पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द प्राप्त कर लेने पर मनुष्य में आसक्ति शेष नहीं रहती और उसे किसी वस्तु की चाह नहीं रहती।

न्याय-वैशेषिक दर्शन में कर्म- न्याय और वैशेषिक दर्शन भौतिकता के सबसे अधिक निकट माने जाते है। इन दोनों दर्शनों के सिद्धान्त एक जैसे है। ''भारतीय दर्शनों के इतिहास में इन दोनों दर्शनों को समान तन्त्र कहकर इनके सम्बन्ध को स्पष्ट किया जाता है।''[18]

न्याय दर्शन के अनुसार ईश्वर के द्वारा ही सृष्टि का निर्माण व विनाश होता है, जिसको ईश्वर पूर्व कर्म के अनुसार ही करता है। इसलिए सृष्टि या विनाश का मूल कारण कर्म ही है। न्याय में कर्म को अदृष्ट कहा गया है। ''जब ईश्वर की इच्छाा होती है तब अणुओं में गति का संचार होता है और जब उसकी इच्छाा होती है, तब उसकी गति बन्द हो जाती है। परन्तु ईश्वर स्वेच्छाा से ऐसा नहीं करता।''[19] ईश्वर एक, अनन्त और नित्य है। दिक्, काल, मन तथा आत्मा इसे सीमित नहीं कर सकते। इन द्रव्यों का ईश्वर के साथ वही सम्बन्ध है जो शरीर का आत्मा के साथ। यद्यपि ईश्वर को मनुष्य के पाप और पुण्य के अनुसार चलना पड़ता है, फिर भी वह सर्वशक्तिमान है।[20] कुछ विद्वानों का यह भी मानना है कि मनुष्य अपने कर्मो का कत्ता तो है लेकिन वह ईश्वर के द्वारा अपने अतीत कर्मो के अनुसार प्रेरित होकर कर्म करता है।

वैशेषिक दर्शन में कर्म को पदार्थ के रूप में वर्णित किया गया है। जो कि द्रव्य पर आश्रित रहता है। ''वैशेषिक दर्शन में कर्म शब्द क्रिया का प्रर्याय है।''[21] वैशेषिक दर्शन में वर्णित कर्म पदार्थ का स्वरूप अन्य दर्शनों में वर्णित कर्म के स्वरुप से अलग है। वैशेषिक दर्शन में कर्म पाँच प्रकार के है। 1- उत्प्रेक्षण अर्थात ऊपर की ओर फेकना, 2- अवक्षेपण अर्थात नीचे की ओर फेकना, 3- आकुंचन अर्थात सिकोड़ना, 4- प्रसारण अर्थात फैलाना, 5- गमन अर्थात चलना।

साख्य-योग में कर्म का स्वरुप- सांख्य और योग दर्शन में बहुत गहरा सम्बन्ध हैं इन्हें एक ही सिक्के के दो पहलू भी कहा जाता है। सांख्य सैद्धान्तिक पक्ष है तो योग व्यवहारिक पक्ष है।

सांख्य दर्शन कर्म सिद्धान्त पर विश्वास करता है। इसका प्रमाण सत्कार्यवाद के रुप में देखने को मिलता है, जिसके अनुसार कार्य अपने कारण में पहले से ही विद्यमान रहता है। यह नियम सृष्टि चक्र की परम्परा में भी कार्य करता है। ''सर्वप्रथम सांख्य दर्शन ही कर्म फल व्यवस्था को स्वीकार करता है।''[22]

योगदर्शन में चार प्रकार के कर्मो का वर्णन देखने को मिलता है। सांख्य और योग के साधकों के लिए योगदर्शन में निम्न चार कर्मो का वर्णन करते हुए महर्षि पतंजलि कहते है कि- ''योगी के कर्म अशुक्ल और अकृष्ण (निष्काम) होते है। अन्य तीन प्रकार के कर्म दूसरों के लिए होते है।''[23] योगदर्शन में वर्णित यह कर्म चार प्रकार के है- 1- शुक्लकर्म, 2- कृष्णकर्म, 3- शुक्लकृष्ण कर्म और 4- अशुक्ल अकृष्ण कर्म।

- शुक्लकर्म- पुण्य आचरण या पुण्य कर्म को योगदर्शन में शुक्लकर्म कहा जाता है।
- कृष्णकर्म- पाप कर्म को शुक्ल कर्म कहते है।
- शुक्लकृष्ण कर्म- पाप और पुण्य मिश्रित कर्म को शुक्लकृष्ण कर्म कहा जाता है। उपरोक्त तीनों कर्म सकाम कर्म है जो बन्धन का कारण बनते है।
- अशुक्ल अकृष्ण कर्म- निष्काम कर्म को ही योगदर्शन में अशुक्ल अकृष्ण कर्म कहा गया है। योगियों के लिए ऐसे ही कर्मो को करने

का विधान किया गया है। गीता में भी ऐसे निष्काम कर्म को ही बन्धन से मुक्ति का मार्ग माना गया है।

वास्तव में योगी के कार्य करने का तरीेका अन्य लोगो से कुछ अलग होता है। उसके कर्मो को पाप व पुण्य की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। ''योगी इस प्रकार काम करता है कि उसके कर्म अच्छे या बुरे वर्ग में नहीं आ सकते, उन्हें न अच्छा कहते है न बुरा। इसका कारण यह है कि योगी का चित्त साधना से शुद्ध हो गया है, अतः उसके कर्मो के पिछे उसका कोई स्वार्थपूर्ण अभिप्राय नहीं होता। योगी निम्न चित्त के माध्यम से कार्य सम्पन्न नहीं करते है, वे निर्माण चित्त के द्वारा कार्य सम्पन्न करते है।''[24] ऐसे कर्मो से कर्म फल की प्राप्ति नहीं होती तथा संसार के बन्धन से मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

निष्कर्ष- इस प्रकार उपरोक्त दर्शनों में वर्णित कर्म-सिद्धान्त के आधार दुःखों की आत्यान्तिक निवृत्ति का मार्ग प्राप्त किया जा सकता है। सभी कर्मो में सबसे श्रेष्ठ कर्म निष्काम कर्म को ही माना जाता है, जो किसी बन्धन का कारण नहीं बनता है और यही भारतीय दर्शनों का मूल विषय भी है। उपरोक्त विवेचन से भी यह भी स्पष्ट हो जाता है कि चार्वाक को छोड़कर सभी भारतीय दर्शनों में कर्म की अवधारणा किसी न किसी रुप में अवश्य ही प्रकट होती है। कही इसे ऋत्, कही अपूर्व, कही अदृष्ट तथा कही कर्म कहा गया है। यदि किसी दर्शन में कर्म का स्पष्ट वर्णन नहीं भी मिलता है तो उसके सहायक/पूरक दर्शन में कर्म का स्पष्ट वर्णन देखने को मिल जाता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि कर्म का सिद्धान्त भारतीय दर्शनों के मूल सिद्धान्तों में से एक है, जो पुनर्जन्म के सिद्धान्त को भी प्रभावित करता है और मनुष्य की साधना को भी प्रभावित करती है।

सन्दर्भ सूची-

1 सिन्हा, प्रो॰ हरेन्द्र प्रसाद, 2016, ''भारतीय दर्शन की रुपरेखा'', अध्याय-5, पृष्ठ संख्या- 55

2 सिन्हा, प्रो॰ हरेन्द्र प्रसाद, 2016, ''भारतीय दर्शन की रुपरेखा'', अध्याय-5, पृष्ठ संख्या- 55

3 सिन्हा, प्रो॰ हरेन्द्र प्रसाद, 2016, ''भारतीय दर्शन की रुपरेखा'', अध्याय-1, पृष्ठ संख्या- 04

4 स्वामी विवेकानन्द, 2022, छत्तीसवाँ पुनर्मुद्रण, ''कर्मयोग'', पृष्ठ संख्या- 107

5 vedicaim.com/2019/08/darshan-kya-hai.html

6 outlines of Indian philosophy, page no- 18-19

7 six systems of Indian philosophy, उद्धृत सिन्हा, प्रो॰ हरेन्द्र प्रसाद, 2016, ''भारतीय दर्शन की रुपरेखा'', अध्याय-1, पृष्ठ संख्या- 03

8 सिन्हा, प्रो॰ हरेन्द्र प्रसाद, 2016, ''भारतीय दर्शन की रुपरेखा'', अध्याय-1, पृष्ठ संख्या- 14

9 चट्टोपाध्याय, श्री सतीशचंद्र, द्वितीय संस्करण, ''भारतीय दर्शन'', पृष्ठ संख्या- 88

10 सिन्हा, प्रो॰ हरेन्द्र प्रसाद, 2016, ''भारतीय दर्शन की रुपरेखा'', अध्याय-8, पृष्ठ संख्या- 123

11 पाण्डेय, रामनाथ आर., 2012, ''बौद्धधर्म में कर्म की अवधारणा: एक नूतन दृष्टि'', रीसर्चगेट पब्लिकेशन,

12 सिन्हा, प्रो॰ हरेन्द्र प्रसाद, 2016, ''भारतीय दर्शन की रुपरेखा'', अध्याय-8, पृष्ठ संख्या- 137

13 चट्टोपाध्याय, श्री सतीशचंद्र, द्वितीय संस्करण, ''भारतीय दर्शन'', पृष्ठ संख्या- 103

14 WWW.Jainpuja.com

15 सिन्हा, प्रो॰ हरेन्द्र प्रसाद, 2016, ''भारतीय दर्शन की रुपरेखा'', अध्याय-8, पृष्ठ संख्या- 291

16 भारद्वाज, प्रो॰ ईश्वर, 2011, ''मानव चेतना'', पृष्ठ संख्या- 263

17 चट्टोपाध्याय, श्री सतीशचंद्र, द्वितीय संस्करण, ''भारतीय दर्शन'', पृष्ठ संख्या- 259

18 सिन्हा, प्रो॰ हरेन्द्र प्रसाद, 2016, ''भारतीय दर्शन की रुपरेखा'', अध्याय-11, पृष्ठ संख्या- 203

19 WWW.nayidhara.in , पाण्डेय, कपिलदेव नारायण सिंह, 1951,''भारतीय दर्शन में कर्म की महत्ता'', नई धारा,

20 चट्टोपाध्याय, श्री सतीशचंद्र, द्वितीय संस्करण, ''भारतीय दर्शन'', पृष्ठ संख्या- 137

21 मौर्य, डॉ॰ उधम, 2019, ''वैशेषिक दर्शन में कर्म की अवधारणा'', एस. एच. आई. एस. आर. आर. ;ैभ्प्ैत्द्ध अंक 2, खण्ड 2, पृष्ठ संख्या- 250-254

22 दत्त, हरीश, 2017, ''भारतीय दर्शन में कर्म-नियम द्वारा व्यक्तित्व निर्माण'', आई. जे. सी. आर. टी. ;प्श्रब्त्द्ध अंक 5, खण्ड 3, पृष्ठ संख्या- 586-597

23 ''कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्।।'' पतंजलि योगसूत्र, कैवल्य पाद, सूत्र संख्या- 7

24 सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द, 2013, ''मुक्ति के चार सोपान'', पृष्ठ संख्या- 257